अरणिक मुनि

प्रकाशक

वृहद्गच्छीय श्रीपूज्य जैनाचार्य

श्रीचन्द्रसिंहसूरीश्वर शिष्य

पण्डित काशीनाथ जैन

कलकत्ता

२०१ हरिसन रोड के नरसिंह प्रेस में

पण्डित काशीनाथ जैन

द्वारा मुद्रित

प्रथमावृत्ति २०००] सन् १९२६ [मूल्य ॥)

निवेदन

प्रिय पाठक वृन्द !

आज हमें परम हर्ष है, कि आप सज्जनोंके कर-कमलोंमें, हम अपनी यह "अरणिक मुनि" नामक पुस्तिका भेंट कर रहे हैं। आशा है, हमारी अन्यान्य पुस्तकोंके अनुसार यह भी प्रिय प्रतीत होगी।

यह पुस्तक कोई ऐसी नहीं कि पाठकोंको इसका हाल मालूम न हो। पर हाँ, हिन्दी प्रेमियोंके लिये यह पुस्तक बिलकुल नयीसी मालूम होगी। अरणिक मुनिका चरित्र ढाल आदिमें बहुधा आया करता है। किन्तु उसकी भाषा पूरि तरह समझमें न आनेके कारण पाठकोंको उससे सम्पूर्ण आनन्द नहीं मिलता था। अतएव उस अभावकी पूर्तिके लिये यह पुस्तक प्रकाशित करनेका साहस किया गया है।

ता० १—४—२६
२०१ हरिसन रोड,
कलकत्ता।

आपका
काशीनाथ जैन

अरणिक मुनि

पहला परिच्छेद ।

देवताओंके रचे हुए समवसरणमें प्रभु बैठे हुए हैं। उनके नयनोंसे अमृत रसके समान प्रवाह जारी है। उनके मुखड़े पर दिव्य ज्योति झलक रही है। सम्मुख असंख्य नर-नारी उनके उपदेश श्रवण करनेके लिये उनके दर्शनोंसे अपने नेत्र सफल करनेके निमित्त, उनके एक-एक शब्दको अपनी आत्माके कल्याणके निमित्त कर्णगोचर करनेके लिये एकाग्र मनसे बैठे हुए हैं। सारी बस्तीके लोग उनके दर्शनोंके लिये दल-के-दल चले आ रहे हैं। भारी भीड़ इकट्ठी है।

कुछही देर बाद प्रभुने कहा,—"महानुभावो! प्रत्येक आत्मा प्रभु है; प्रत्येक तथंकर है; परन्तु हाँ, यह पदवी उसे तभी प्राप्त होती है, जब इसके लिये समुचित साधना करे। जैसे राजा होनेके लिये अपनेमें राजोचित गुणोंका होना बहुतही जरूरी है, वैसेही तीर्थंकर होनेके लिये पहले त्यागका स्वरूप जाननेकी बड़ी जरूरत है। जिसे तीर्थंकर होनेकी अभिलाषा हो उसे काँटोंकी सेजपर सोना पड़ता है, सिर नीचे करके लटकना पड़ता है, चिताकी ज्वालामें जलना पड़ता है और निर्भय होकर देहके कर्मोंका नाश कर, आत्माको तपाकर उसे इस पदवीका अधिकारी बना देना होता है। और नहीं तो भवसागरमें डूबता हुआ वह मनुष्य तूफानकी तरङ्गोंमें बहता हुआ न जाने किस गहरी खाईमें जा पड़ता है। इस संकटसे उद्धार पानेके लिये सच्चे त्यागका अवलम्बन करना चाहिये। संसार आत्माके लिये बन्धन

स्वरूप है—वैराग्य-दीक्षाही एक मात्र शान्ति निकेतन है। जीवनके प्रत्येक पलमें ज्वालामुखीकी ज्वाला सुलगती रहती है। पश्चातापके भँवर-जाल और मोहकी भूल-भुलैयोंमें पड़ा हुआ जीव भटकता रहता है। त्यागमेंही जीवको शान्ति मिल सकती है, पुण्य-स्मृतियोंसे ही संयमका लाभ होता है, जिससे आत्म-कल्याण साधित होता है। वासना-रूपी जोंक हृदयमें ठिके हुए उच्च आदर्शोंका खून पिये चली जाती है और निर्बल आत्माओंको अपने जालमें फँसाये डालती है। नये-नये आडम्बर फैलाकर वह अपना मोहन-मन्त्र जगाती है। क्रमसे आत्मा अपनी दैवी-शक्तिको भूल जाती है और कलुषित जीवनमेंही इस लोक और परलोककी इतिश्री समझकर सन्तुष्ट हो रहती है। वास्तवमें इस आसुरी शक्तिके गुलाम जीते-जी मुर्देके समान हैं। मनुष्यको चाहिये कि इससे बचें।

"इस प्रकारकी सभी दैहिक-उपाधियोंकी अचूक औषधि वैराग्यही है। इसीसे विषयोंके विषका निवारण होता है। पुण्य हृदयोंके लिये यही सबसे मधुर सङ्गीत है। त्याग और वैराग्यही सार है और सब निस्सार है।"

इस प्रकार देशना समाप्त हो जानेपर सारी जनता 'धन्य-धन्य'की ध्वनिसे आकाश कम्पित-कर उनके चरणोंमें प्रणामकर अपने-अपने घरकी ओर चल पड़ी।

सारे नगरके लोग प्रभुकी देशनाकी एक-एक बातपर विचार करने लगे; सबके चित्तमें त्याग और वैराग्यकी लहरें उठने लगीं। परन्तु निर्बल मनुष्यका हृदय भला कैसे अनायास काम और मोहकी मायाका फन्दा काटकर फेंक सकता है?

पर यह क्या? राजमहलके अन्दर यह कैसी हलचल मची हुई है? आज इस रातके समय जब सारा नगर खा-पीकर सोनेकी तैयारी

कर रहा है और घर-घरमें शान्ति विराज रही है, राजमहलके अन्दर कैसा गोलमाल मचा हुआ है?

राजकुमार अरणिकके हृदयपर प्रभुका उपदेश वज्र-लेखकी तरह खुद गया है। वे संसारकी मोहमाया छोड़ गृह-त्याग करनेके लिये तैयार हैं और इसीलिये अपने माता-पितासे आज्ञा माँगने आये हैं। राजा अपने एकमात्र प्रिय पुत्रका यह विचार श्रवणकर मोहसे व्याकुल हो रहे हैं, उनकी आँखें डब डबायी हुई हैं। गला भराया हुआ है— मुँहसे बोली नहीं निकलती। बालकपनसे ही सुख, वैभव और विलासकी गोदमें पला हुआ यह कोमल-कलेवर सुकुमार राजकुमार किस प्रकार संसार त्यागकर वैराग्य-जीवन व्य-तीत कर सकेगा, यह उन राजाकी समझमें नहीं आता। वे बार-बार राजकुमारको सम-झानेकी चेष्टा कर रहे हैं।

राजाने कहा,—"प्यारे पुत्र! तुझे किस बातकी कमी है, जो तू इस प्रकार सारे राज्य वैभवपर लात मारकर चला जा रहा है?"

अरणिकने बड़ी विनयसे कहा,—"पिता जी! मैं क्या कहूँ, कि मुझे किस बातकी कमी दिखाई देती है?"

राजाने बड़े आश्चर्यसे कहा,—"बेटा! तेरे घरमें फूली-फली कल्पलता मौजूद है; फिर तुझे कमी किस बातकी है? सौ-सौ दास-दासियाँ सदा हाथ बाँधे तेरे सामने खड़ी रहती हैं। पानीकी जरूरत होनेपर तुझे दूध मिलता है, एकको बुलानेपर तेरह आते हैं; फिर किस बातके लिये तू घर छोड़ रहा है? क्या किसीने तुझे किसी बातका कष्ट दिया है?"

राजकुमारने कहा,—"पिताजी! कष्टकी तो कोई बातही नहीं है। भला मुझे कोई कष्ट क्यों देने लगा, सभी मेरी इच्छा देखकर चलतें और मेरा कहा करते हैं। सैकड़ों आदमी

रात-दिन मेरी सेवामें लगे रहते हैं। हर घड़ी मौजमें रहता हूँ। वैभव-विलासकी कोई कमी नहीं है; परन्तु पिताजी! मुझे यह सब व्यर्थ ही मालूम पड़ता है। यह वैभव किसी कामका नहीं है। विलासितासे पुण्यके पर कट जाते हैं। वैभव आत्माको मलिन कर देता है। यह वैभव, विलास और सुख-सम्पत्ति आत्माके आदर्शोंको विकसित नहीं होने देती—इनसे अमृत नहीं, विष बरसता है। इस लिये आप मुझे दीक्षा लेनेकी आज्ञा दीजिये।"

राजाने कहा,—"पुत्र! यह तू क्या कह रहा है? इस छोटीसी अवस्थामें ही तुझे इतनी ज्ञानकी बातें किसने बतलायीं? अभी तो तूने जवानीमें पैर रखा है और अभीसे दीक्षाकी बात करने लगा? जैसे वसन्त ऋतुमें कोयलोंकी कूक ही भाती है, वैसेही युवावस्थामें तो संसारमें रहकर गृहस्थाश्रमके सुख-भोगही प्रिय मालूम पड़ते हैं। लोग तो तेरे

व्याहकी वाट जोह रहे हैं और तू वैरागी होने जा रहा है, यह कैसी वात है ?

राजकुमारने बड़ी नम्रतासे कहा,—"पिता जी ! प्रभुकी देशना सुनकर आनेके वादसेही मेरा चित्त विकल हो रहा है। अहा, उनकी कैसी मधुर वाणी थी ! उसे सुननेके वादसेही इस देह-रूपी कोठरीमें छिपे हुए अनन्त शक्तिमान् आत्माकी अनन्त शक्तियाँ विकसित होनेके लिये छटपटा रही हैं। संसारिक जीवनका विष उतारकर चारित्रका अमृतपान करनेकी इच्छा प्रवल हो रही है। पिताजी ! अव, आप मेरा मोह त्याग दीजिये; क्योंकि मेरा चित्त, इस वर्त्तमान जीवनकी अपेक्षा वड़ेही अलौकिक किन्तु सादे, निर्मल और आत्महितार्थी जीवनको अवलम्बन करनेके लिये व्याकुल हो रहा है। आप खुशीसे मुझे दीक्षा लेनेकी अज्ञा दे दीजिये।"

राजाने कहा,—"तो क्या पुत्र ! तू घर

बैठे वैसा जीवन नहीं व्यतीत कर सकता ?"

राजकुमार बोले,—पिताजी ! आपकी बात किसी अंशमें ठीक है; परन्तु उत्तम जीवन व्यतीत करनेके लिये संसारमें डुबकियाँ खानेकी आवश्यकता नहीं है—इसमें बन्धन बहुत हैं; वैराग्यसे आत्माका कमल खिल जाता है, जिसे देखकर आदर्श-रूपी हंस आपसे आप उनके पास आते हैं। इसमें देवत्वका वास है और संसारमें दैत्योंका निवासही अधिक है। इसमें घोर अन्धकारकाही राज्य है। जिधर देखो उधरही बनावटीपन और भेद नज़र आते हैं। त्यागी भीतर और बाहर एकसा होता है। उसके आचार, विचार और उपदेश एकसे होते हैं। पिताजी ! मुझे त्यागी जीवनही प्रिय है। आप मुझे वैसाही जीवन व्यतीत करनेकी आज्ञा दें। यह संसार अब मुझे बिलकुल खारी मालूम हो रहा है।"

राजा बड़ेही दुखित हुए। उन्होंने रुँधे हुए

गलेसे कहा,—'तो क्या तेरी इच्छा यह महल छोड़कर जङ्गलोंमें चले जानेकी है? क्या तू किसी अँधेरी गुफामें बैठकर योगध्यान किया चाहता है?'

राजकुमारने कहा,—"पिताजी! जब हृदय पर वैराग्यका सच्चा रङ्ग चढ़ जाता है, तब क्या घर, क्या बाहर, क्या महल, क्या जङ्गल दोनों ही बराबर हैं। मेरी सांसारिक व्याधियाँ नष्ट हों, और मेरा निश्चल मन वैराग्यकी धुनमें लगा हुआ आत्म-सिद्धि कर सके, बस मैं तो यही चाहता हूँ। पिताजी! मैं आपसे इसी लिये आज्ञा माँग रहा हूँ, जिसमें मैं आत्माके चारों ओर फैले हुए घोर अन्धकारको दूर कर सकूँ। आप मेरे इस मनोरथको पूरा होने दें। इसमें किसी तरहका अड़ङ्गा न लगायें।"

पुत्रका यह अटल निश्चय देख, पिताके चेहरेका रङ्ग उड़ गया। मुखपर चिन्ताकी स्पष्ट रेखा खिंच गयी। वे फिर कुछ भी न बोल सके। उनका हृदय चंचल हो गया। तरह-

तरहकी चिन्ताओंकी लहरें उठने लगीं। सोचते-सोचते वे व्याकुल होकर कह उठे; "पुत्र! तू मेरा इकलौता बेटा है। मेरे और कोई सन्तान नहीं। मेरा इतना बड़ा राज्य कौन भोगेगा? क्या राज्य भोग तेरे भाग्यमें नहीं लिखा है?"

पुत्रने कहा,—"पिताजी! आप क्यों भूलते हैं? यह राज्य तो क्या, तीनों लोकका राज्य भी आत्म-कल्याणके सामने तुच्छ है।"

राजाने कहा,—"पुत्र! बस तू ऐसी-ऐसी बातें कहकर मुझे और न जला। तू मुझे छोड़ना चाहता है; पर मैं पिता होकर अपने इकलौते पुत्रको कैसे छोड़ सकता हूँ? जब तूही राजपाटको छोड़ देगा, तो फिर मैं किस लिये इसके साथ चिपटा रहूँगा? यदि तू इसे छोड़नाही चाहता है, तो ले, मैं तेरे आगे-आगे चलता हूँ। अब मैं भी आत्म-साधनमें ही लगूँगा। मैं अपनेको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ कि तेरे जैसा पुत्र पाकर मुझे आत्म-

सिद्धि प्राप्त करनेको अभिलाषा हुई।"

यह कहते-कहते राजाके नेत्रोंमें एक प्रकारकी अलौकिक ज्योति छा गयी। जीवनमें कोई भयङ्कर उलट फेर होनेपर मनुष्यकी कान्तिमें सचमुच बड़ा परिवर्त्तन दिखाई देने लगता है और आनन्द या शोककी छाया मुख पर झलकने लगती है। पिताको इस प्रकार अपने मतपर आते देख कुमारको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने प्रसन्न मनसे कहा,—"पिताजी! मेरी माता कहाँ हैं? वे क्यों नहीं दिखाई देतीं? क्या कहीं बाहर गयी हैं?" कहते-कहते कुमारके हृदयमें मातृ-स्नेहकी नदी उमड़ आयी। वे मातासे मिलनेके लिये अधीर हो उठे।

राजाने कहा,—"बेटा तू थोड़ी देर खड़ा रह, मैं अभी यहींपर तेरी माताको बुलवा लेता हूँ।" यह कह उन्होंने एक दासीसे रानीको बुला लानेके लिये कहा। थोड़ीही देरमें रानीजी

"माता ! मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। तुम आज्ञा देती हो या नहीं ?

(पृष्ठ १३)

आ पहुँचीं। उन्होंने आतेही पूछा,—"स्वामी! कहिये, क्या आज्ञा होती है?"

राजाने कहा,—"जरा अपने इस लाड़ले पुत्रसे बातें करो।"

रानी बोलीं,—"और क्या यह आपका लाड़ला पुत्र नहीं है? अकेले मेरा ही है?" कहते-कहते उनके मुखड़े पर हँसी छा गयी।

राजाने कहा,—"नहीं, नहीं, रानी! तुम ऐसी बात न करो। यह अब मेरा गुरु है। हाँ, तुम्हारा पुत्र हो सकता है।"

रानी घबरा उठीं। यह क्या मामला है? आज ऐसी बातें क्यों सुननेमें आ रही हैं? वें कुछ पूछनाही चाहती थीं; कि कुमार बीचमें ही बोल उठे; "माता! मैं दीक्षा लेने जा रहा हूँ। तुम आज्ञा देती हो या नहीं?"

रानीने ऊपरी क्रोध दिखलाते हुए कहा,—'चलो, चलो, ऐसी बहकी-बहकी बातें न करो। तुम्हारे पिता कहते तो जरा ठीक भी था। तुम

इस छोटीसी अवस्थामें कहाँके गुरुज्ञानी बन गये?"

राजकुमारने कहा, "माता! मैंने पिता-जीको राजी कर लिया है, अब केवल तुम्हारी आज्ञाकी ही देर है। मेरी अवस्था भले ही थोड़ी हो, पर हूँ तो मनुष्य ही? मनुष्यमें असंख्य वर्षों का अपूर्व चैतन्य भरा हुआ है। इस चेतनको पुरुषार्थ द्वारा जीतना होता है। यह काम बाग बगीचे और महल-अटारीमें बैठकर नहीं किया जा सकता।"

पुत्रकी यह ज्ञान-भरी बातें सुन रानी तो हक्का-बक्कासी हो रहीं। उनका हृदय दुःखसे भर आया। उन्होंने कहा, "बेटा! कहाँ तो मैं तेरा ब्याह कर नयी-नवेली दूल्हनको घर लाकर अपनी साध मिटानेका सपना देख रही थी, कहाँ तू एक दम मेरी गोद सूनी करके चला जाना चाहता है?"

कुमारने कहा,—"माता! तुम वीर-पत्नी और वीर-माता हो। तुम्हारे मुखसे ऐसी बातें नहीं

सोहतीं। तुम मुझे राज्य और लक्ष्मीका लोभ न दिखाओ। मुझे यह सब सुख बोझसा मालूम पड़ता है। खाना, पीना, सोना, परिश्रम करना, आदि सभी मनुष्योंके नित्यकर्म हैं; पर जो अपनी आत्माको पहचानता है, वही असलमें सच्चा मनुष्य है। माता! न मैं ब्याहके झंझटमें पड़ना चाहता हूँ और न राज्यके। मुझे मेरे अभीष्ट पथपर जानेकी आज्ञा दे दो।"

माताका हृदय भर आया। जी तड़पकर रह गया। हाय! मेरा इकलौता पुत्र कलसे हाथमें भिक्षापात्र लेकर भीख माँगता फिरेगा? यह गुलाबके फूलसी मुलायम देह तपके कष्टोंको क्योंकर सहन करसकेगी? माँका कलेजा पुत्रका बिछोह कैसे सहेगा? यही सोचते-सोचते रानीकी आँखोंसे टपाटप आँसू टपकने लगे।

माताके आँसू पोंछते हुए कुमारने कहा,—"माँ! रोती क्यों हो? उलटे खुश क्यों नहीं होतीं कि तुम्हारा पुत्र राजपाटके लोभमें न पड़-

कर आत्महितके लिये संसार त्याग कर रहा है? माँ! मेरा भविष्य मुझे बड़ाही उज्ज्वल मालूम पड़ता है। देखो, मेरे पिता भी मेरे साथ चलनेको तैयार हो गये हैं।"

रानीने कहा,—तो क्या तुम सचमुच ही जाओगे? क्या सचमुच तुम्हारे पिता भी तुम्हारे साथ जा रहे हैं? तो फिर मुझे यहां रहकर क्या करना है? जब पति और पुत्र दोनोंही खुशी-खुशी संसार छोड़ रहे हैं, तब मैं यहाँ रहकर कौनसा पुण्य लूटूँगी? चलो, मैं भी चलती हूँ।"

इस प्रकार माता, पिता और पुत्र तीनोंही दीक्षा लेनेके लिये तैयार हो गये और तीनों घरसे निकल पड़े।

रास्तेमें जाते-जाते एक बार फिर बूढ़े राजाको मोहने आ घेरा। उन्होंने कहा—"पुत्र! तुम अब भी घर लौट जाओ। इस जवानीमें ही तुम दीक्षा लेकर क्या करोगे? मैं बूढ़ा हूँ।

मुझेही दीक्षा लेने दो।"

राजकुमार अरणिकने हँसते हुए कहा,—पिताजी! जवानी जीवनका वसन्त है। इसकी शोभा इसीमें है कि संसारकी वासनाओंकी विषैली वायु न वहे और अन्तशुद्धिकी भावनाका मलय-पवन चलकर भाव-कुसुमों का विकास करे। आत्म-साधना करनेके लिये किसी अवस्थाकी क़ैद नहीं है। फिर आप तो बड़े स्वार्थी मालूम पड़ते हैं कि स्वयं तो आत्म-साधना करने जा रहे हैं और मुझे पीछे लौट जानेका उपदेश दे रहे हैं। जवानी तो और भी दीवानी होती है। इसमें तो और भी संयमकी आवश्यकता है। युवावस्थामें मनुष्यमें बड़ी शक्ति होती है—उसका उपयोग सन्मार्गमें क्यों न किया जाये? क्यों उस शक्तिको दुनियादारीमें गँवाकर नष्ट किया जाये? पिताजी मोहको छोड़कर प्रभुके पास चलकर दीक्षा लीजिये।"

पुत्रकी यह वात सुन माता-पिताके मनमें और भी उमङ्ग उत्पन्न हो गयी, वे जल्दी-जल्दी प्रभुकी ओर जाने लगे। राज्य, लक्ष्मी, धन, वैभव सबका विचार त्यागकर वे दीक्षा लेनेके लिये आगे बढ़े।

दूसरा परिच्छेद।

जगत्‌की समस्त साधुताके सागरके समान प्रभु ऊँचे समवसरणमें बैठे हुए हैं। कितने ही आत्मोद्धारके अभिलाषी श्रद्धालू जन उनके चारों ओर बैठे हुए हैं। इसी समय वह तीनो महान् व्यक्ति भी वहाँ आ पहुचे और आतेही बोले,—“प्रभो! हमें दीक्षा दीजिये।” उनके मुखड़ों पर उस समय क्षण क्षणपर नये नये भाव झलक रहे थे। उनके हृदयोंमें भक्तिकी नदी उमड़ रही थी।

प्रभुने कहा,—"देखो, दीक्षा लेना कोई हँसी-खेल नहीं है। वह तो मनुष्यके लिये कसौटी सूचक यन्त्र है। संयम और समता ये दोनों उसके मुख्य लक्षण हैं। इसकी सिद्धिके लिये कर्मवीर होना चाहिये। इसमें पुरुषार्थकी पूर्ण आवश्यकता रहती है। वैभव और लक्ष्मीसे विराग करना पड़ता है। बस्तीसे दूरका रहना होता है। किसी वस्तुसे दिल न लगाना चाहिये। किसी पर क्रोध न करना चाहिये। साथ ही कायरता भी न दिखानी चाहिये। इन सब बातोंकी ओर पूरा ख़याल रखनेकी आवश्यकता है। यह कोई दुकन्दारका सौदा नहीं है जो मन चाहे मूल्य पर किसीको बेच दिया जाये। क्षणभरके जोशमें आकर दीक्षा लेना और फिर फिसल जाना अच्छा नहीं। जिसे सचमुच आत्मशुद्धिकी लगन लगी हो, वही सुन्दर रितिसे आत्म-साधना कर सकता है। यह व्रत जितना ही उत्तम है, उतना ही कठिन

भी है। आत्मत्यागकी बाजी लगनी पड़ती है। आन्तरिक शत्रुओंको भगानेके लिये रजोहरण (ओघा) और मुखवस्त्रिका का उपयोग करना पड़ता है। यह मुखवस्त्रिका (मूँहपत्ति) अधिक न बोलनेकी सूचक निशानी है। अतएव ख़ासकर दीक्षा लेनेवालोंको जहाँ तक होसके कम और आवश्यकही बोलना चाहिये। ज्यों-ज्यों इन्द्रियोंका दमन होता जायेगा, त्यों-त्यों दीक्षा देदिप्यमान होती जायेगी।

प्रभुकी देशना पूरी होजाने पर उन तीनों पिपासुओंकी दीक्षा-विधि भी हो गयी—तीनोंको दीक्षा दे दी गयी। इसके बाद प्रभुने पिता और पुत्रको गुरु-शिष्यके भावमें लाकर उन्हें विहार करनेके लिये भेज दिया। दोनों प्रभुके आज्ञानुसार वहाँसे चल पड़े। जिनके सब दिन गद्दी-तकियों पर लोटते बीतते थे, वे तपस्याके तेजसे तमतमाते हुए विहार करने लगे। उनके हृदयोंमें इस समय सत्यकी निर्मल

ज्योति जगमगा रही थी। चन्द्रमाकी कान्तिके समान उनकी साधुता दिन प्रतिदिन विकसित होती जा रही थी।

साधुओंकी यह रीति है कि छोटे छोटे शिष्य गाँवसे भिक्षा लाकर अपनेसे बड़ोंको खिलानेके बाद आप खाते हैं; परन्तु प्रेमकी डोरीसे खिंचे हुए अरणिकके पिताको यह रीति पसन्द नहीं आयी। उन्होंने संसारके सारे माया-जाल काट डाले, वैभव विलास त्याग दिये; पर पुत्रपरसे प्रेम हटाये न हटा। वह अब तक ज्योंका त्यो है। जंगल जंगल भटकनेवाले पुत्रको देखकर आज भी पिताको यह देखकर दया आती है कि इसका कोमल शरीर कितना कष्ट पा रहा है। पिताको हरदम इस बातका ध्यान बना रहता है कि पुत्रको किसी प्रकारका कष्ट न होने पाये। साधु हो जाने पर भी मोहने पिण्ड नही छोड़ा। प्रेम ऐसी ही विकट वस्तु है। यह किसीकी परवा नहीं करता। सदा अपनी

मनमानी राह चलता है । बड़े बड़े साधु महात्मा ओंको इसने समय समय पर अपने चक्करमें डाल दिया है । चाहे गृहस्थ हो या साधु उसका हृदय प्रतिक्षण किसी न किसी अदृश्य वस्तुकी ओर प्रेमकी डोरसे खिंचा चला जाता है । इस तरह इस पिताका प्रेम अभीतक अपने पुत्र पर पूर्ववत् बना हुआ था ।

प्रेमका मूल्य आत्म-बलिदानके सिवा और कुछ नहीं है । पिताने साधुओंकी रीति पालन नहीं किया । वे पुत्रको भीख माँगने नहीं देते-आपही गाँवमें जाकर माँग लाते और पुत्रको खिलाते और आप खाते हैं । उनका पुत्र प्रेम ही गुरु बन बैठा था । इसी प्रकार करते हुए कई वर्ष बीत गये । बूढ़े राजाकी अवस्था और भी ढल गयी । उनके हाथ-पैर, आँख-कान जवाब देने लगे । अङ्ग-अङ्ग शिथिल हो गये । क्रमशः एक दिन राजाने यह शरीर छोड़ दिया । बेचारे अरणिक सदाके लिये अकेले हो गये ।

पिताके शरीरान्तके बाद अरणिक एक-दो दिन तो भूखे रहे, तीसरे दिन अधिक क्षुधा लगनेके कारण जंगलोंकी शीतल छाया त्याग कर दिनके बारह बजे पासके ग्राममें गोचरीके लिये आये। अबतक पिताके रहनेसे उन्हें कभी इस तरह बहेरने—अहार लेनेके लिये गाँवमें नहीं जाना पड़ा था। आज यह पहला ही अवसर था।

जेठकी कड़कड़ाती हुई धूपमें उस सुन्दर-सुकुमार शरीरवाले युवा साधुको चलते देखकर, लोगोंके हृदय आश्चर्य और भक्तिसे भर आये। पृथ्वी तवेसी तप रही थी। पाँवमें छाले पड़ रहे थे। न कहीं छाया दिखाई देती थी, न कहीं विश्रामका स्थान था। मारे थकावट और प्यासके बिचारे युवा योगीके प्राण होठोंपर आ रहे थे। उन्होंने चारों ओर आशा-भरे नेत्रोंसे देखा; पर कहीं कोई आशाकी बात नहीं दिखाई दी। कण्ठ सूख रहाथा। आँखोंसे

ज्वालासी निकल रही थी। क्षुधा और पिपासाके मारे प्राण व्याकुल हो उठे थे।

इसी समय अरणिककी दृष्टि कुछ दूर पर बने हुए एक मकान पर पड़ी। वे लपके हुए उसी ओर चले। पहुंचकर उसी मकानकी खिड़कीकी छायामें खड़े हो गये। उस मकानकी खिड़कीसे दो प्रेम, उत्कण्ठा और कौतूहल-भरी आँखें उस युवा साधुकी ओर देख रही हैं। सच पूछिये, तो उन आँखोंमें वह जादू था, जो ऋषि-मुनियोंके भी सिर चढ़ जाये। अहा! कैसा अपूर्व लावण्य था! अंग-अंगसे लुनाई और सुथराई टपकी पड़ती थी। मुख पर सुन्दरताके साथ-साथ शान्ति छायी हुई थी। उस सुन्दरीका पति परदेश गया हुआ था। इस लिये वह काम-बाणसे व्यथित्त हो रही थी। उसने अरणिककी वह अलौलिक सुन्दरता देख, मोहित्त होकर अपनी दासीको पुकारकर कहा,—"सखी! वह देख,

उस साधुका मुखड़ा कैसा भोला-भाला और सुन्दर है! देखतेही हृदयमें आनन्द छा जाता है। धूलसे लिपटे हुए निराभरण अङ्गों पर भी कैसा सौन्दर्य बरस रहा है। मेरी तो तनिक भी इच्छा नहीं होती कि उसकी ओरसे आँखें फेर लूँ। तू जाकर उसे भोजनके बहाने बुला ला।"

दासीने कहा,—"पर बहन यह तो कोई संसार-त्यागी साधु मालूम पड़ता है। इसके साथ तुम्हारा मेल क्यों कर होगा?"

सुन्दरीने कहा—"मुझे तो यह कोई राह भूला हुआ मुसाफ़िर मालूम पड़ता है। जाकर उसे बुला ला। बेचारा भूखा-प्यासा दिखाई देता है।"

दासी थोड़ी ही देरमें अरणिकको भोजनके बहाने बुला लायी। वे भी भूखे-प्यासे थे, झट उसके साथ चले आये।

घरके भीतर आतेही उन्होंने देखा कि एक परम लावण्यमयी सुन्दरी चञ्चल चरणोंसे

चलकर उनके पास दौड़ी हुई आयी और उनपर लगातार नयन-बाण चलाने लगी। उसका वह सावनकी नदीके सामान उमड़ता हुआ यौवन, भौंरेके समान काले-काले बाल, मद-माती चाल और बाँकी अदाएँ मुनिपर वार-पर-वार करने लगीं।

आजतक संसारमें सौन्दर्यके पीछे न जाने कितने सिर कट चुके हैं, कितनी बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ हो चुकी हैं, कितने जीव इसकी वेदी पर बलि हो चुके हैं, करोड़ोंकी सम्पत्ति लुट गयी है। वाह रे सौन्दर्य! तूने संसारको खूब ही नाच नचा रखा है। जिस हृदयमें तू बस जाता है, उसे शैतानी होनेपर भी तू देवी कह कर पुजवा देता है। तेरे लिये लोग स्वतन्त्रता गवाँकर गुलामी कबूल करनेमें ही मजा मालूम करने लगते हैं। जिस दिन तू अपनी कला समेट लेता है, उस दिन जीवनसे मरण ही भला मालूम होने लगता अस्तु।

वह सुन्दरी बाँकी अदाके साथ साधुके पास आकर खड़ी हो गयी। साधुके सौन्दर्यको देखकर उसकी टकटकी बँध गयी। मानों उसके ऊपर कोई जादू चल गया। थोड़ी देर बाद वह हँसती हुई बोली,—"आप क्या चाहते हैं?"

साधुने सरल भावसे कहा,-"निर्दोष अहार।' सुन्दरीकी आँखोंमें मस्ती छायी हुई थी। अपने हृदयका प्रेम प्रकट करनेके लिये उसका दिल धड़क रहा था। बड़ी मुश्किलोंसे उसने अपनी जुबान रोकी और कामको जगानेवाले पदार्थ खानेके लिये मँगवाये। दासी तुरतही कामोद्दीपक मोदकका भरा हुआ थाल ले आयी। सुन्दरीने अपनी मनोकामना पूर्ण करनेके लिये थालको हाथमें लेकर लड्डू बहेराने—देने शुरू किये। बेचारे मुनिकी तो भूखके मारे अतड़िया कुल-बुला रहीं थीं। उन्होंने इच्छानुसार खूब लड्डू लिये। गरमीका समय था, अतः सुन्दरीके अनुरोध करने पर वहीं पर किसी

निर्जन कमरेमें जाकर अहार करना शुरू किया। खाते-खाते उनकी देहमें गरमी सी मालूम पड़ने लगी—कामोद्दीपन सा ज्ञात होने लगा। वे भोजन कर उस घरसे वाहर हो जानेकी तैयारी करने लगे। इसी समय उस मतवाली औरतने उनके सामने आकर बड़ी मदमाती निगाहसे उनकी ओर देखना शुरू किया और मुस्कराती हुई वोली,—क्यों? कहाँ जा रहे हो? इस भरी जवानीमें तुमने भी क्या भेष निकाला है? तुमने इस परिषहरूपी कुठारसे यौवनके वृक्षको काट डालनेमें क्या लाभ सोचा है? न मालूम ऐसी बुद्धि तुम्हें कैसे उपजी। मुझे तो तुम्हारी मूर्खता पर दया आती है। मालूम होता है, किसीने तुम्हें भरमाया है, नहीं तो भला इस चढ़ती जवानीमें तुम वैरागी क्यों बनते?'

उसकी इस मीठी चुटकीको सुन कर साधु थोड़ी देरके लिये भौंचकसे हो रहे। उसकी बातोंमें इतनी मिठास थी कि शायद उसका

अरणिक मुनि

क्यों ? कहाँ जा रहे हो ? इस भरी जवानीमें तुमने भी क्या भेष निकाला है ?

(पृष्ठ २८)

शत्रु भी उसे तुरत कड़ा जवाब नहीं दे सकता था; साधुका चित्त चञ्चल होने लगा। वे वैराग्य-जीवनकी कठोरता और संसारमें रहकर सुख-भोग करनेकी सुगमताकी तुलना करने लगे; पर जब माँ-बापकी बात भी नहीं मान कर मैंने वैराग्य ले लिया; तब इस समय मुझे क्या करना चाहिये? उनका मन क्षण-क्षणमें पलटने लगा। वे घबरा उठे।

इतनेमें वह सुन्दरी फिर बोली,—"देखो, तुम्हें इस दीक्षाका बखेड़ा दूर कर देना चाहिये। जवानीके दिन इसके लिये नहीं बने हैं। कहाँ यह कोमल गात, यह भरी जवानी, खेलने-खाने और मौज करनेके दिन और कहाँ यह कठिन साधु-जीवन! यह तुम्हारी कोरी मूर्खता है।"

साधुके दिलमें सुन्दरीकी एक-एक बात तीरकी तरह चुभने लगी, उन्होंने सोचते-सोचते कहा,-"अच्छा मान लो,मैंने दीक्षा तोड़

दी; पर उसके बाद मैं कहाँ रहूँगा ? अगर मैं अपने राज्यमें जाऊँगा तो मेरी प्रजा मुझको बार-बार धिक्कार देगी। मेरी बड़ी बेइज्जती होगी। कोई मेरी बात भी न पूछेगा। किसीको मेरी बातका विश्वास नहीं होगा।"

सुन्दरीने कहा,—"इसके लिये क्या चिन्ता है ? राज्यमें जानेका क्या काम है ? यहीं रहो, मैं सदा तुम्हारी सेवामें तत्पर रहूँगी। मेरे यौवनकी तृप्तिके लिये एक तुम जैसे पिपासुकी मुझे भी आवश्यकता है। बस तुम तो मजेसे यहीं पड़े रहो। तुमने इतने दिन दीक्षाका पालन किया उसीका यह सुन्दर फल मिला समझो। मालूम होता है, मेरा-तुम्हारा पूर्व-जन्मसे ही संयोग चला आता है। बस चलो, शयनागारकी ओर चलें और प्रेमकी बातें करें।" इस प्रकार उस चञ्चलाने अपने दिलकी बात साफ़-साफ़ कह डाली।

साधु तो बड़े चक्करमें पड़े। इस चाँदसे

मुखड़ेका मोह उनसे छोड़ा नहीं जाता था। वे कष्टोंसे ऊब उठे थे। इसी समय उन्हें यह चाँदनी खिली दिखलाई दी। अब तो वे दसों दिशाओंमें केवल उसीको देखने लगे। वैराग्यका सारा भाव मिट गया। मीठी वाणीका जादू उन पर पूरी तरह चल गया।

"चलो, अब खड़े-खड़े सोचते क्या हो?" यह कह उस सुन्दरीने एक बार फिर साधुपर अपने नैनोंका तीर छोड़ा। बेचारे एकदम पिघलकर पानी हो गये। साधुने अपने दीक्षाके समय लिये हुए वस्त्र उतार दिये और सदाके लिये संसार-सुख भोगनेके इरादेसे उस सुन्दरीके साथ चल पड़े। साधुके लिये बहुत बड़ी परीक्षाका समय आया था; पर उनकी आत्मिक निर्बलतानें उन्हें उस परीक्षामें उत्तीर्ण नहीं होने दिया—वे सफल नहीं हो सके।

तीसरा परिच्छेद

अरणिक मुनिसे फिर गृहस्थ हो गये और उस सुन्दरीके साथ रहते हुए संसारके सुखोंका उपभोग करने लगे। माया ऐसीही प्रबल होती है। यह हृदयसे देवता को दूर कर उसमें असुरको प्रतिष्ठा करती है। क्षणिक आनन्दका लालच दिखाकर मोक्षका द्वार बन्द करवाती है। जवानी और सुन्दरता कितनोंको सीधी राहसे हटाकर बुरे और कँटीले रास्तेमें ले गयी है। आज अकेले अरणिक ही इस पङ्कमें नहीं फँसे। लड़कपनसेही जिस अरणिकके मनमें वैराग्यका भाव वर्त्तमान था, वह एकही दिनके कष्टोंसे इतना ऊब उठा कि एक मायाविनी मोहिनीके फेरमें पड़

ही तो गया। यह सब समय और स्थितिकी बलिहारी है।

विलास और वासना जिसके मनमें प्रबल भावसे जग जाती है, उसे फिर सिवा सांसारिक सुख-भोगके और कुछ भी नहीं सुहाता। अन्तमें यही वासना उसे नाना प्रकारके दुःखोंके भँवरजालमें डाल देती है। एक बार जो चूका, वह गया।

यही हाल अरणिकका हुआ। एक दिन अपनी देहको तुच्छ समझकर जिसने पिताके आगे वैराग्यकी बातें बघारी थीं, वही आज एक सुन्दरीके नयनोंका शिकार हो गया। उसका बिना मोलका दास बन गया। ओह! क्षण-भरका मोह आत्माका इतना बड़ा रूपान्तर कर देता है? बड़े अचम्भेकी बात है।

इधर अरणिक तो चैनकी वंशी बजाने लगे, उधर साधुओंमें उनकी खोज ढूँढ़ होने लगी; पर उनका कहीं पता न लगा। तब

सब लोग प्रत्येक ग्राम और नगरमें उन्हें ढूँढ़ने लगे। एक दिन वे लोग अरणिककी माताके पास पहुँचे, जो साध्वी हो कर आत्म-साधनामें लगी हुई थी। उसने जब अरणिकके गुम होनेकी बात सुनी तब एक बारही घबरा उठी। माता चाहे घरमें रहे या जंगलमें चली जाये; पर उसके हृदयसे सन्तानका प्रेम कभी दूर नहीं हो सकता। पुत्रके लिये माता अपने सारे सुखोंको विसर्जन कर देती है। उसके लिये वह जलती आगमें कूद सकती है। समुद्रमें डूब सकती है। पुत्रका कष्ट मातासे नहीं देखा जा सकता। माताके सामने कुपुत्रका भी तिरस्कार नहीं होता। माता उसके हजारों अपराधोंको भी बिसार देती है। माताका सा प्रेम इस संसारमें और किसीका नहीं है। माताकी नस-नसमें सन्तानका प्रेम भरा रहता है। यह प्रेमका सागर कभी सूखता नहीं है।

उसी दिनसे अरणीककी माता उनको

खोजमें गाँव-गाँवकी धूल छानने लगी। जगह-जगह पूछती चलती कि कहीं किसीने मेरे प्यारे अरणिकको देखा है? बुढ़ापेसे शरीर शिथिल हो रहा था, आँखोंसे कम दिखाई देता था, तोभी दिलमें उत्साह था कि कहीं तो बेटा दिखाई पड़ ही जायेगा। उस बेचारीको न खानेकी सुध थी, न पीनेकी, न सोनेकी। केवल यही धुन थी कि कैसे पुत्रको देख पाऊँ। धन्य हो माता! धन्य है तुम्हारा प्रेम!

एक दिन धूपमें घूमते-घूमते बेचारीका सिर चकरा गया। उसे मूर्च्छा आ गयी और वह ज़मीन पर गिर पड़ी। होशमें आने पर वह फिर दौड़ चली। लोग उसे पगली समझकर उसकी दिल्लगी उड़ाने लगे। उसका 'पुत्र, पुत्र!' कहकर दौड़ते फिरना लोगोंको दिल्लगी से कम नहीं मालूम पड़ता था। कवियोंने जो मातृ-स्नेहका वर्णन किया है, वह बिलकुलही सच है।

चिलचिलाती हुई कड़ी धूपमें और घोर

अँधेरी रातमें वह बेचारी अपने पुत्रको ढूँढ़ती फिरती थी। ढूँढ़ती-ढूँढ़ति हैरान हो गयी; पर पुत्रका कहीं पता न चला। रोती-रोती बेचारी बेहाल हो गयी। उसकी आँखें लाल हो गयीं। चित्त व्याकुल हो गया। वह बिल कुल पगली सी बन गयी।

इसी तरह अपने पुत्रको ढूँढ़ती हुई वह एक दिन राजमन्दिरके सामान किसी महलकी ओर चली गयी, वहाँपर उसने एक मनोहारिणी सुन्दरीके साथ बातें करते हुए एक युवा पुरुषको खिड़की पर बैठा देखा। उसे ऐसा मालूम पड़ा, मानों यही मेरा पुत्र है। परन्तु रह-रहकर उसे सन्देह होने लगता था कि कहीं मेरी आँखोंको भ्रम तो नहीं हुआ; पर नहीं, यह मुखड़ा, यह आँखें, यह कोमल गात तो ठीक उसीके से हैं। यही सोचकर वह उसी मकानके नीचे आकर खड़ी हो रही। खड़ी-खड़ी उन दोनोंकी बातें सुनने लगी। अबके उसने अपने पुत्रकी कण्ठ-

ध्वनि पहचान ली और बड़े जोरसे पुकारा,—"अरणिक! अरणिक! प्यारा पुत्र! तू कहाँ है?"

अरणिक चौंक उठे। सुन्दरीने पूछा,—"क्यों? क्या सोचने लगे?" अरणिकने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। इधर माताने फिर पुकारा,—"अरणिक! ओ अरणिक!?"

अरणिक माताका स्वर सुनकर घबरा उठे। सुन्दरीने उनकी बाँह पकड़ कर अपनी ओर खींचा; पर वे झट-पट अपनेको छुड़ाकर नीचे चले आये। वहाँ आकर देखा कि सचमुच माता सामने खड़ी हैं। माताने पुत्रके सिरपर प्रेमसे हाथ फेरते हुए कहा,—"बेटा! तू यहाँ कैसे आ पहुँचा?"

यह कहते-कहते वृद्धा रानीकी आँखोंसे आँसू गिरने लगे। अरणिक तो घबरा उठे कि माताके प्रश्नका क्या उत्तर दूँ? चेहरेका रङ्ग उड़ गया। दिल गुनहगारकी तरह छटपटाने लगा। अन्तमें उन्होंने लड़खड़ाती हुई आवाज़में

कहा,-"कर्मोंके भोग भोग रहा हूँ, और क्या?" कहते-कहते अरणिककी भी आँखें भर आयीं।

उनके आँसू पोंछते हुए माताने कहा,—"बेटा! मैंने तो तुझसे पहले ही कहा था कि चारित्र-पालन करना खाँड़ेकी धार पर चलना है। इस रास्तेमें फूलही नहीं, काँटे बिछे हैं। यह व्रत बड़ा ही कठिन है। इसको साधना और भी कठिन है। महान् पदवी अनायासही नहीं मिलती। चारित्र बड़ा भारी अमूल्य रत्न है। तूने उसे मिट्टीके मोल लुटा दिया। हाथमें आया हुआ चिन्तामणि-रत्न गवाँ दिया।"

माताके ये वाक्य अरणिके कलेजेके पार हो गये। उन्हें बड़ी ग्लानि होने लगी। वे मन-ही-मन अपनेको धिक्कार देने लगे। इतने दिन ऐश- आराममें बिता दिये, इसका बड़ा भारी पश्चाताप हुआ। उनका दिल सौ-सौ टुकड़े होने लगा। उन्हें ऐसा मालूम पड़ने लगा, मानों उन्होंने बड़ा भारी अक्षम्य अपराध किया

है। दिलके अन्दर तूफ़ान सा जारी हो गया। वे कुछ देरतक एक शब्द भी न बोल सके।

माताने कहा,—"पुत्र! बोलते क्यों नहीं? चुप क्यों हो रहे? बड़ी उत्साहसे चारित्र ग्रहण कर तुमने मेरा नाम उजार दिया था—मैं अपनेको बड़ी, भाग्यवती समझती थी; पर आज यह क्या देख रही हूँ? मैंने तुमसे ऐसी आशा कभी नहीं कि थी। चारित्रका त्याग कर तुमने क्यों कर विलासका आश्रय लिया? ख़ैर, अब भी कुछ नहीं बिगड़ा। बड़े-बड़े महर्षि-मुनियोंका भी तपोभङ्ग हो जाता है। चलो, फिरसे चारित्र-साधनामें लग जाओ।"

पुत्रने अपराधीकी भाँति दोनों हाथ जोड़े हुए माताके सामने सिर झुका दिया। इसके बाद बड़े करुणा-भरे स्वरमें कहा,—माता! मेरे अपराधोंको क्षमा कर दो। मैं क्षणिक सुखमें भूलकर मोहमें पड़ गया। इस स्त्रीकी सुन्दरताने मेरी साधना भङ्ग कर दी। मैंने जान-

बूझाकर अपना जीवन नष्ट कर डाला—मोक्षका द्वार बन्द करदिया।" यह कहते हुए अरणिक माताके चरणोंपर गिर पड़े।

उन्हें ऊपर उठाते हुए माताने कहा,—"पुत्र! सोच न करो। मैं भी तो साध्वी होकर पुत्र-प्रेमको विसर्जन न कर सकी और तुम्हारे लिये गली-गली, गाँव-गाँव घूमती फिरी। किसी बातको अङ्गीकार करना सहज है; पर उसका पालन करना बड़ा ही कठिन होता है।"

अरणिकने कहा,—"माता! मैं बड़ाही अधम हूँ। मेरे लिये आपको इतना कष्ट उठाना पड़ा। माता! क्षमा करो। एक तो मैंने विषय-वासनामें पड़ कर व्रत भङ्ग किया। दूसरे, तुम्हें इतना-इतना कष्ट पहुँचाया।

माताने कहा,—"चलो। इन सब बातोंका सोच छोड़ दो।"

अरणिकने कहा,-"माता! मैं कहाँ चलूँ?"

माताने कहा,—"चारित्र-पालन करने।"

इतने दिन पास रह कर अब दगा देकर चले जा रहे हो? [illegible] कहती हुई वह सुन्दरी अरणिकका पल्ला पकड़ कर खड़ी हो गयी।

अरणिकने कहा,—पर माता! "यह तो माता",—पर क्या? चलो, यहाँसे चलकर और बातें की जायेंगी।"

अबतक खिड़की पर बैठी हुई वह सुन्दरी चुप-चाप इन दोनों माँ-बेटेकी बातें सुन रही थी। अबके पुत्रको माताके साथ जाते देख क्रोधसे तमतमायी हुई नीचे उतर आयी और उनकी राह रोककर बोली,—"अरे मूर्ख! कहाँ जा रहे हो? मुझे क्यों छोड़ रहे हो?"

अरणिकने कहा,—"वहीं जा रहा हूँ, जहाँ मुझे जाना चाहिये।"

सुन्दरीने कहा,—तो क्या मुझे जालमें फँसानेके ही लिये तुम आये थे? अरे तुमसे योगीका अब कोई क्योंकर विश्वास करेगा! इतने दिन पास रह कर अब दग़ा देकर चले जा रहे हो?" यह कहती हुई वह सुन्दरी अर-णिकका पल्ला पकड़ कर खड़ी हो गयी।

अरणिकने कहा,—"मेरा पल्ला छोड़ दो।

अगर तुमने शुरूसे ही मेरा विश्वास नहीं किया होता, तो आज तुम्हें इतनी निराशा नहीं होती तुम स्त्री-जातिकी बदनामी करनेवाली पिशाचिनी हो। तुमसी कुलटाएँ अपने स्वामियों को धोखादेकर, पर-पुरुष प्रेमकर अपना और उसका दोनोंका धर्म बिगाड़ती हैं। यह पति धर्मका नाश किसीके लिये कल्याणकारी नहीं है। अब भी अपनी करनी पर शर्म करो।"

अरणिकके प्रत्येक शब्दमें तिरस्कार भरा हुआ था। मारे ग्लानिके सुन्दरीने उनका पल्ला छोड़ दिया; पर उसने अन्तिम बार फिर चेष्टा की।

बोली,—"अच्छा, जाना कि तुम बड़े भारी ज्ञानी हो। चलो, अब मौजसे कुछ खेलें-खायें

अरणिकने कहा,—"सुन्दरी! अब आज तुम मेरी माता हो। मुझे क्षमा कर दो अब मुझे सौन्दर्यकी सुराका पान नहीं करना है। अब तुम्हारा रूप मुझे मोहित नहीं कर सकता। मुझे क्षमा करो।"

अपने लिये 'माता' यह सम्बोधन सुनकर सुन्दरी चुप हो रही। उसके मुँहसे एक शब्द भी नहीं निकला। अरणिक उसका मोह-जाल छिन्न कर माताके साथ चल पड़े।

वहाँसे गुरुके पास जाकर अरणिककी माताने उन्हें फिर चारित्र ग्रहण कराया; पर अरणिकने देखा कि चारित्रके कठिन मार्ग-पर चलना हँसी-खेल नहीं है। उन्होंने अपनी माता और गुरुको सम्बोधन कर कहा —“आप लोगोंकी दयासे आजसे मेरा जीवन पुनः पवित्र हो गया; पर मुझसे इस कठिन चारि-त्रका पालन होना असम्भव है। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं संसारिक भोग-विलासकी अभिलाषा रखता हूँ। मुझे तो कुछ और ही राह चलना पसन्द है।” उस समय अरणिकके हृदयमें विशुद्ध वैराग्य उपजा था।

गुरुने पूछा,—“तुमने कौनसी राह पसन्द की है?”

अरणिकने कहा,—"देखिये।" यह कहकर वे उस दोपहरके समय धूपसे धधकती हुई शिला पर निराहार अनशन-व्रत किये पड़े रहे। गुरु और माता देखते ही रह गये। अरणिक अधिक समय तक अनशनका कष्ट न सहन कर सके। वे वहुतही शीघ्र मृत्युको प्राप्त होकर स्वर्ग चले गये।

धन्य हो अरणिक! तुम धन्य हो। तुमने इतनी छोटी उमरमें राज्य-वैभवको लात मार दी और एक बार मायाके जालमें फँसकर भी फिर अपने जीवनके परम कर्त्तव्यमें लग गये। प्रशंसा इसीमें नहीं है कि मनुष्यसे कभी कोई भूल न हो; पर भूलकर भी जो अन्तमें सत्पथ पर चला आता है और अपने धर्म और कर्त्तव्यके लिये प्राणोंको बाज़ी लगा देता है। उसीकी प्रशंसा करनी चाहिये।

अरणिकने अपने जीवन द्वारा इस वातको भली भाँति दिखला दिया। साथही उनकी

साध्वी माताने भी यह बात भली भाँति प्रामाणित कर दी कि माताएँ यदि चाहें तो अपने पुत्रको ऊँचेसे ऊँचे शिखरपर पहुँचा दे सकती हैं। अरणिककी माता ऐसी वीर और धर्मात्मा न होतीं, तो अरणिक जिस गहरे कूपमें गिर पड़े थे, उससे निकलना उनके लिये असम्भव था।

आज भी हमारे देश और धर्मोद्धारके लिये ऐसीही कर्त्तव्य परायणा माताओंकी आवश्यकता है और जब ऐसी माताएँ अधिकतासे पायी जायेंगी, तभी हमारे देश और धर्मोन्नतिकी आशा की जायेगी।